सच्चर समिति का सच

• शिवानी

देश में मुसलमानों की वास्तविक स्थिति के अध्ययन के लिए गठित सच्चर समिति की रिपोर्ट ने पूर्वानुमानित नतीजे ही सामने लाए हैं। और संसद में इस रिपोर्ट के पेश होते ही सभी चुनावबाज़ पार्टियों को बहस के लिए एक नया मुद्दा मिल गया मानो मुसलमानों की इस स्थिति से वे अभी तक अनजान थे। तो जहाँ किसी ने इस पर साम्प्रदायिकता की रोटी सेंकनी चाही, तो वहीं कोई खुद को मुसलमानों का सबसे बड़ा हितैषी साबित करने में जुट गया। ग़ौरतलब है कि 1980 में तत्कालीन इंदिरा गाँधी सरकार द्वारा गठित गोपाल सिंह समिति ने मुसलमानों की सामाजिक-आर्थिक दशा के अध्ययन से जो निष्कर्ष निकाले थे आज 26 साल के लम्बे अन्तराल के बाद भी कमोबेश वही स्थितियाँ हैं। इन मायनों में सच्चर समिति की रिपोर्ट कोई नया तथ्य नहीं प्रस्तुत कर रही है। मुसलमानों की दोयम दर्ज़े की स्थिति एक नंगी सच्चाई है और यह भी उतना ही सच है कि यह स्थिति उनमें एक पार्थक्य, असुरक्षा की भावना, अपमान और बेगानेपन का अहसास पैदा करती है। ऐसा नहीं है कि सरकार और कांग्रेस को मुसलमानों की स्थिति का अभी-अभी इलहाम हुआ है। मुसलमानों की स्थिति के बारे में जो बातें सच्चर समिति सामने लायी है वे तो पहले से ही पता थीं। फिर इसके पीछे सरकार का मक़सद क्या था?

आज़ादी के 60 साल बाद भी मुसलमानों की बड़ी आबादी विकट ग़रीबी, बदहाली और जहालत में ज़िन्दगी बसर कर रही है। यदि वास्तविक स्थिति पर नज़र डाली जाय तो पता चलता है कि इस देश की कुल आबादी का 13.4 प्रतिशत मुसलमान हैं, जिनमें से 43 फीसदी से ज़्यादा आबादी ग़रीबी रेखा के नीचे बदतरीन हालात में जी रही है। कुल आबादी का 49 प्रतिशत आज भी शिक्षा से महरूम है जिनमें सबसे बड़ी तादाद औरतों की है। मुसलमान बच्चों का एक-चौथाई हिस्सा तो कभी स्कूल जा ही नहीं पाता। इन बच्चों में मृत्यु दर सबसे अधिक है और साथ ही इसमें बाल मज़दूरों की संख्या भी सबसे ज़्यादा है। देश के बुनकर उद्योग, चूड़ी उद्योग, चमड़ा उद्योग, पटाख़ों की फ़ैक्ट्री आदि जैसे उद्योगों की विषम अमानवीय परिस्थितियों में काम करने वालों में मुसलमान आबादी से आये बच्चों की संख्या सबसे ज़्यादा है। इसके विपरीत शिक्षा और नौकरियों में इनका प्रतिशत बहुत ही कम है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, उनमें साक्षरता की दर भी राष्ट्रीय दर से कम है। हिन्दू फासीवादियों के प्रचार के विपरीत सच्चाई यह है कि केवल 3.4 प्रतिशत मुसलमान बच्चे ही मदरसों में पढ़ने जाते हैं। सरकारी नौकरियों में भी उनका प्रतिनिधित्व सिर्फ़ 4.9 प्रतिशत है। इनमें भी ज़्यादातर निचले पदों पर हैं। पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश और असम जैसे राज्यों में मुसलमान आबादी का प्रतिशत क्रमशः 25.2 प्रतिशत, 18.5 प्रतिशत और 30.9 प्रतिशत है। वहाँ नौकरियों में मुसलमानों की भागीदारी क्रमशः 4.7 प्रतिशत, 7.5 प्रतिशत और 10.9 प्रतिशत है, जबकि इन राज्यों में संसदीय वामपंथियों और तथाकथित सेक्यूलर पार्टियों की कई बार सत्ताएँ रही हैं या अभी भी हैं और जो अपने मुसलमान प्रेम का ढिंढोरा जब-तब पीटती रहती हैं।

दूसरी तरफ़, साम्प्रदायिक दलों और फासीवादी ताक़तों के "मुस्लिम तुष्टिकरण" के आरोपों के बावजूद सच्चाई यह है कि आज भी मुसलमानों की भारी आबादी ग़रीबी, अशिक्षा और अपमान का जीवन व्यतीत कर रही है। वे न सिर्फ़ सामाजिक-आर्थिक हैसियत में बाकी आबादी की तुलना में आज भी काफ़ी पीछे हैं, बल्कि भयंकर बर्बर मज़हबी दमन-उत्पीड़न का शिकार भी हैं। आम मुसलमान इस देश में किस अपमान और डर के साये में जीता है उसे समझने के लिए अपने किसी मुसलमान मित्र से पूछिये कि उसके लिए शहर में एक कमरा या मकान किराए पर लेना तक कितना कठिन है। या फिर हर बमकाण्ड के बाद हर मुसलमान को आतंकवादी मान लेने वाली नज़रों और ग़रीब मुसलमानों की बस्तियों में आधी रात को पड़ने वाले पुलिसिया छापों को याद करना ही काफ़ी होगा। न्यायमूर्ति आनन्द नारायण मुल्ला कमीशन की रिपोर्ट में साफ़ कहा गया था कि आज़ादी के बाद से अब तक हुए साम्प्रदायिक दंगों में मुसलमानों के जानमाल का नुक़सान सबसे ज़्यादा हुआ है। आई.पी.एस. अधिकारी विभूति नारायण राय की पुस्तक में इस तथ्य का हवाला दिया गया है कि दंगों में पुलिस-प्रशासन बाक़ायदा एक हिन्दू-पक्ष के रूप में काम करते हैं।

सर्वविदित है कि मुसलमान आबादी को वोट बैंक के रूप में ही देखा जाता है और धर्म को सिक्के के रूप में वोट बैंक की राजनीति में इस्तेमाल किया जाता रहा है। इसीलिए तो मुसलमानों के हितों की नुमाइंदगी का दम भरने वाली कांग्रेस को मुसलमानों की याद आने लगी और एकाएक उनकी पिछड़ी, दोयम दर्ज़े की स्थिति का इलहाम हुआ। अब कई राज्यों और ख़ास तौर पर उत्तर प्रदेश में विधानसभा चुनाव के ठीक पहले अचानक जाग उठे उसके इस मुसलमान प्रेम की मंशा को आसानी से समझा जा सकता है। सच्चर समिति की रिपोर्ट पेश करके उसने एक बार फिर खुद को मुसलमानों का असली हितैषी (!!??) साबित करने की घृणित कोशिश की है। दरअसल, यह कांग्रेस का कोई मुसलमान प्रेम नहीं है बल्कि वोट बैंक की राजनीति में उछाला गया उसका मुसलमान "कार्ड" है। सच्चाई तो यह है कि आज़ादी से अब तक मुसलमान आबादी के सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने की दिशा में किसी भी चुनावी पार्टी ने अभी तक

कोई काम नहीं किया है। और भला वे यह काम करें भी क्यों? यह उनके एजेण्डे पर जो नहीं है! उधर मुसलमानों के धार्मिक नेता भी अपना उल्लू सीधा करने के लिए बहुसंख्यक मेहनतकश मुसलमान आबादी को पिछड़ेपन के अंधकार में जकड़े रखना चाहते हैं, इसलिए यह आम मुसलमान आबादी की दुर्दशा की बात कभी नहीं करते हैं। बल्कि इसके विपरीत धार्मिक कट्टरपंथ को बनाये रखने का काम इस्लामी कट्टरपंथ भी बखूबी करता है। और इस इस्लामी कट्टरपंथ के खेल का फायदा भी हिन्दू धार्मिक कट्टरपंथ ही उठाता है।

अतः अपनी बात फिर दुहराते हुए हम यह कहते हैं कि सच्चर समिति के माध्यम से मुसलमान प्रेम का जो नाटक कांग्रेस द्वारा रचा गया है, वह और कुछ नहीं बल्कि मुसलमानों में अपने खोये हुए आधार को पुनः हासिल करने की एक घिनौनी क़वायद है। उधर इस वोट बैंक को अपनी ओर खींचने की भरसक कोशिश में वामदल से लेकर मुलायम सिंह, वी.पी. सिंह व मायावती सहित सभी चुनावबाज़ पार्टियाँ जी-जान से लग गयी हैं और भाजपा के पास तो इस मुद्दे पर अपना पुराना राग छेड़ने के सिवा कोई दूसरा रास्ता बचा नहीं है। ऐसे में चुनावी मदारियों के इन तमाशों की असलियत को समझने और उसका पर्दाफ़ाश करने की ज़रूरत आज सबसे ज़्यादा है।

आइए, अब एक निगाह सच्चर समिति द्वारा मुसलमानों की इस हालत में सुधार के लिए सुझाये गये नुस्खों पर डालते हैं। जी हाँ! वही पुराना आरक्षण का नुस्खा! पिछले 60 साल में आरक्षण के इस झुनझुने से दलितों-आदिवासियों की जीवन-स्थिति में कितना सुधार आया है यह सबके सामने है। मुसलमानों के लिए शिक्षा और रोज़गार में आरक्षण लागू कर भी दिया जाय तो मात्र इतना फ़र्क पड़ेगा कि कि उनके बीच से एक अत्यन्त छोटा, सुविधाजीवी, व्यवस्थापरस्त मध्यवर्ग पैदा होगा जो गाँवों और शहरों में निकृष्टतम कोटि के उजरती गुलामों का जीवन बिताने वाली आम मेहनतकश मुसलमान आबादी से खुद को पूरी तरह काट लेगा और बेहद वफ़ादारी के साथ व्यवस्था के साथ खड़ा होगा, ठीक वैसे ही जैसे दलितों को आरक्षण के मामले में हुआ है। अतः मुसलमान समुदाय को शासक वर्ग की इन कुटिल चालों को समझना होगा। उन्हें समझना होगा कि दोयम दर्ज़े की इस हालत और साम्प्रदायिक ताक़तों के हमलों को जवाब और इससे उनकी मुक्ति आरक्षण जैसी किसी पैबन्दसाज़ी से नहीं बल्कि एक नये समाज के लिए व्यापक जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष के साथ जुड़कर ही हो सकती है।

मुसलमानों की कुल आबादी का 80 फीसदी से भी अधिक हिस्सा मेहनतक़श है। यही स्थिति दलितों की है। सवर्ण हिन्दुओं की एक भारी आबादी उजड़कर खेतों में मज़दूरी कर रही है या औद्योगिक केन्द्रों में उजरती गुलाम के रूप में खट रही है। स्त्रियों की बहुसंख्या पूँजी और पुरुषों की दोहरी गुलामी की शिकार है। कुल मिलाकर कहा जाय तो हर जातिगत, धार्मिक, लैंगिक पहचान आज तीखे तौर पर दो खेमों में बँटी हुई है—धनाढ्य और मेहनतकश। आरक्षण या ऐसा कोई भी लॉलीपॉप मेहनतकशों की समस्याओं का समाधान नहीं है। हर जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र के मेहनतकशों के मुद्दे एक हैं और उनकी क्रान्तिकारी एकजुटता के रास्ते इंकलाब का विकल्प ही उनके सामने मौजूद एकमात्र विकल्प है।

सद्दाम को फाँसी

(पेज 12 से जारी)

संगठन ही अमेरिकी साम्राज्यवाद का सच्चा प्रतिरोध कर रहे हैं। अरब देशों के शेख-शाह तो उसी साम्राज्यवाद के तलवेचाट और पत्तलचाट हैं। तो आख़िर जनता क्या करे? वह हमास और हिज़बुल्ला के साथ ही जाकर खड़ी होती है और अमेरिकी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ लड़ती है। वहीं इन संगठनों ने स्वास्थ्य और शिक्षा की जनसंस्थाएँ ख़ड़ी करके जनकल्याणकारी कार्यों को अंजाम दिया है और जनता का विश्वास जीता है। लेबनान में बर्बर इज़रायली गुण्डों द्वारा मचायी गयी तबाही के बाद तेज़ी से हुआ पुनर्निर्माण हिज़बुल्ला द्वारा चलायी जा रही समानान्तर स्वास्थ्य और निर्माण व्यवस्था द्वारा ही सम्भव हो पाया। इज़रायली लुटेरों की शर्मनाक पराजय भी हिज़बुल्ला के योद्धाओं के पराक्रम और चतुराई और उन्हें लेबनानी जनता के बहादुरी भरे समर्थन का फल था। जब तक जनता का कोई क्रान्तिकारी प्रतिरोध संगठित नहीं होता तब तक जो जनता को अमेरिकी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ संगठित करने आयेगा, जनता उसके नेतृत्व को स्वीकार करेगी।

वास्तव में अमेरिका इराक़ ही नहीं बल्कि समूचे अरब का बाल्कनीकरण करना चाहता है। इस कोशिश में उसे कुछ आंशिक सफलता भी मिली है, हालाँकि यह क्षणिक ही है। लेकिन इसके कारण समूची दुनिया में उसकी थू-थू हो रही है। अरब जनता व्यापक जुझारू एकजुटता की ओर एक कदम और बढ़ गयी है। यही वजह है कि अरब देशों के शेख-शाह शासक भी अमेरिकी युद्ध को समर्थन देने से कतराने लगे हैं, जो अमेरिका के पुराने पालतू कुत्ते थे। ये अब नया मालिक तलाशने में भी जुट गये हैं! (सन्दर्भ : पुतिन का सऊदी दौरा)। मिस्र के राष्ट्रपति हुस्नी मुबारक ने साफ़ तौर पर कहा है कि अमेरिका अरब देशों के आंतरिक मामलों में ज़रूरत से ज़्यादा हस्तक्षेप कर रहा है। वहीं अन्य साम्राज्यवादी देश भी अमेरिकी चौधराहट को अर्थपूर्ण चुनौती देने में जुटे हैं और कइयों ने देनी शुरू भी कर दी है।

वस्तुतः अरब क्षेत्र आज पूँजीवादी विश्व के अन्तरविरोधों की एक प्रमुख गाँठ बन गया है। अभी से ही लगने लगा है कि अरब के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष आने वाले समय में साम्राज्यवाद को काफ़ी कमज़ोर करेंगे। काफ़ी कुछ उसी तरह जैसे तीसरी दुनिया के स्वाधीनता संघर्षों ने विश्व साम्राज्यवाद को एक दौर में कमज़ोर किया था। सद्दाम को तो अमेरिकी साम्राज्यवादी बर्बरों ने फाँसी दे दी। लेकिन जनता की अदालत में एक दिन इन बर्बरों के साथ भी इंसाफ़ किया जायगा।